International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(1): 57-59

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(1): 57-59
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-11-2018
Accepted: 23-12-2018

डॉ० श्याम सुन्दर चौधरी
शिक्षक–अ०प० बालिका उच्च+2 विद्यालय, ब्रह्मोत्तरा, पंडौल (मधुबनी), बिहार, भारत

Correspondence
डॉ० श्याम सुन्दर चौधरी
शिक्षक–अ०प० बालिका उच्च+2 विद्यालय, ब्रह्मोत्तरा, पंडौल (मधुबनी), बिहार, भारत

वेदो में शब्द ब्रह्म व्यवस्था–एक व्याकरण शास्त्रीय अध्ययन

डॉ० श्याम सुन्दर चौधरी

सारांशः
वाणी विचार–शक्ति का वाहक है। शब्द के बिना विचार का कोई भी अस्तित्व नहीं होता है। भतृर्हरि नें वाक्यपदीयम् में कहा है– न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ।। अर्थात् संसार में कोई भी ऐसा ज्ञान नहीं, जो शब्द के बिना प्राप्य हो, प्रत्येक ज्ञान शब्द से अनुविद्ध होता है।

प्रस्तावनाः
शब्द लोक एवं परलोक का आधार है। यदि संसार को ईश्वर की विचार–शाक्ति का एक दृश्य स्वरूप मान लिया तो इस दिव्य कल्पना के स्पन्दन रूप नाद को संसार के प्रादुर्भाव का कारण मानना युक्ति संगत है–

वागेव विश्व भुवनानि यज्ञे वाच इत।
स सर्वम्भृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः।।

वाक् से समस्त विश्व उत्पन्न हुए। वाक् से ही अमृत एंव मर्त्य–संसार का प्रादुर्भाव हुआ।

शब्दस्य परिणामोऽ यमित्याम्नायविदो विदुः। (वाक्यपदीयम्)

अनादि परम्परा जाननें वाले ऋृषियों का कहना है कि संसार शब्द का परिणाम है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है–

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'

कार्य एवं अकार्य की व्यवस्थिति अर्थात् कर्त्तव्य एवं अकर्तव्य का निर्णय करने में शास्त्र ही एकमात्र प्रमाण है। मीमांसाकार जैमिनी तथा व्याकरण तत्वज्ञ पतंजलि ने शब्दों को नित्य सिद्ध करने के लिए कई युक्तियाँ लिखी हैं। उनसे शब्दमय वेदों की नित्यता प्रतिपादित होती है। ऋग्वेद (1/64/45) में वाणी की चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं– 1. परा, 2. पश्यन्ती, 3. मध्यमा और 4. वैखरी। वाणी के तीन रूप गुप्त हैं, जिन्हें ब्रह्म ज्ञानी ही जानते है। चौथा शब्दमय वेद के रूप में लोगों में प्रचलित होता है। यहाँ संदेह हो सकता है कि निराकार ब्रह्म शब्दरूप अपनी विचारधारा कैसे प्रकट करते हैं? किन्तु यह बात तुच्छ प्रतीत होती है। जिन्होंने निराकार होकर साकार जगत् को बनाया, वे क्या नहीं कर सकते! योगवार्तिक में विज्ञान भिक्षु ने लिखा है कि परमात्मा कभी–कभी करुणामय शरीर भी धारण कर लेते हैं–

'अद्भुतशरीरो देवो भावग्राह्यः।'

वेदों में ब्रह्म 'अजायमान' तथा 'बहुधा विजायते' कहा गया है–

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं..... भुवनानि विश्वा। (यजु. 31/19)
अर्थात् प्रजापालक परमात्मा सब पदार्थों के अन्दर विचरता रहता है, वह अजन्मा होकर भी अनेक प्रकार से प्रकट होता है, उनके मूलस्वरूप को ज्ञानीजन देखते हैं, उन्हीं में सम्पूर्ण भुवन व्याप्त है।
श्रुति गुरु–परम्परा से श्रुत विद्या का नाम है। मनुस्मृति कहती है– 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' अर्थात् वेदों को ही श्रुति कहते हैं। 'आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तंब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्ते सा श्रुतिः।'' अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से लेकर आजतक जिनकी सहायता से ब्रह्मादि ऋषियों को सत्यविद्या की प्राप्ति हुई,

उसे 'श्रुति' कहते हैं। सुप्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने वेदभाष्य में कहा है– 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः' अर्थात् इच्छित फल की प्राप्ति हेतु और अनिष्ट वस्तु के त्याग के लिए अलौकिक उपाय जो ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ सिखलाता है, उसे वेद कहते हैं। 'वेद' शब्द किसी एक ग्रन्थ विशेष का बोध न कराकर मन्त्र–ब्राह्मणात्मक शब्दराशि का बोध कराता है। वेदों के सर्वाङ्गीण अनुशीलन के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन छह अङ्गों सहित प्रतिपदसूत्र, अनुपद, प्रातिशाख्य (छन्दोभाषा), धर्मशास्त्र, न्याय तथा वैशेषिक ये छह उपाङ्ग ग्रन्थ भी हैं। 'प्रातिशाख्य' को वैदिक व्याकरण भी कहते हैं। 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।

इस प्रयोजन के लिए व्याकरण की उपयोगिता निर्विवाद है। इसे वेद पुरुष का मुख माना गया है।

वेद की भाषा अलौकिक है और इसके शब्दरूपों में लौकिक संस्कृत से प्रर्याप्त अन्तर है। इसलिये वेदों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में अनेक भ्रान्तियाँ भी हैं, जो आज भी विद्वानों के बीच विवाद का विषय बनी हुई हैं। वैदिक शब्दों के रूढ़ या गूढ़ अर्थो के स्पष्टीकरण के निमित 'निघण्टु' नामक वैदिक भाषा के शब्दकोश की रचना हुई तथा विभिन्न ऋषियों ने 'निरूक्त' नाम से उसके व्याख्या ग्रन्थ लिखे। महर्षि यास्क–प्रणीत निरुक्त के अतिरिक्त अन्य सभी निरूक्त प्रायः दुष्प्राप्य हैं। महर्षि यास्क नें अपनें निरूक्त में अठारह निरूक्तों के उद्धरण दिये हैं। निरूक्त में वैदिक शब्दों की निरूक्ति है। निरूक्ति शब्द का अर्थ है 'व्युत्पत्ति'। निरूक्त का यह सर्वमान्य मत है कि प्रत्येक शब्द किसी न किसी धातु के साथ अवश्य सम्बद्ध रहता है। अतः निरूक्तकार शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित कर धातु के साथ विभिन्न प्रत्ययों का निर्देश देते हैं। वैयाकरण शाकटायन का भी यही मत है कि सभी शब्द धातु से उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक संज्ञापद के धातु से व्युत्पन्न होने के कारण यह आधार नितांत वैज्ञानिक है। आजकल इसी का नाम 'भाषा–विज्ञान' है।

वेदों के सम्यक् ज्ञान और अध्ययन के लिये निरूक्त तथा व्याकरण इन दोनों की साहचर्य रूप से आवश्यकता होती है। व्याकरण का मुख्य प्रयोजन है शब्दों का शुद्धीकरण। निरूक्त व्याकरण के सभी प्रयोजनों को तो सिद्ध करता ही है, किन्तु इसकी मुख्य विशेषता है शब्दार्थ का विवेचन करना। निरूक्त साधित शब्दों–धातुओं की एक विलक्षण कल्पना करके मौलिक अर्थ के अन्वेषण में सतत प्रयत्नशील रहता है। दूसरी बात यह कि निरूक्त से धातु–पाठ के सभी अर्थ उत्पन्न होते हैं, किन्तु धातुओं के परिज्ञान के लिये निरूक्त भी व्याकरण के ही अधीन है। अतः दोनों का अन्योनाश्रय सम्बन्ध है।

निरुक्तकार यास्क ने वैदिक शब्दों के विलक्षण व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है। परवर्तीकाल में विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा ने वैदिक कोष का संग्रह किया जो छन्दोबद्ध, श्लोकबद्ध है। श्री पाददामोदर सातवलेकर, योगिराज अरविन्द आदि महानुभावों ने भी वैदिक शब्दों के रस–रहस्य का पल्लवन किया है।

वैदिक शब्द मूलतः यौगिक माने गए हैं। 'देवता नपात्' नामक ग्रन्थ में विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा ने जिन नपात् देवताओं का परिचय प्रस्तुत किया है, उसके द्वारा शब्दों का व्याकरणिक विवेचन भी प्रकट हुआ है। उदाहरणस्वरूप तनूनपात् इस शब्द का अर्थ घृत किया गया है। 'तनु विस्तारे' तथा 'क्षीण करने' धातु से तनु शब्द बना है, तनु का अर्थ गाय होता है। गाय का पुत्र दुग्ध है तथा दुग्ध का पुत्र घृत होता है। इस प्रकार तनूनपात् शब्द घृत का वाचक है।

आक्रमण का अर्थ सीढ़ी है क्योंकि इस पर क्रमशः चढ़ा जाता है। किसी ऊँचाई पर चढ़ाई करने के क्रम में सीढ़ी (आक्रमण) का उपयोग होता था, किन्तु अब आक्रमण शब्द चढ़ाई का ही वाचक हो गया है। इसी प्रकार शाप शब्द मूलतः नदी तलछट का वाचक है, परंतु अब जीवन–धरा में कालिमा के आगमन को शाप कहा जाता है।

दुहितृ (दुहिता)–संस्कृत में 'दुहिता' शब्द लड़की के अर्थ में प्रयुक्त है, किन्तु निरुक्त के अनुसार दूर में (पतिगृह में) रहने से जिसका हित हो, वह 'दुहिता' (दूर हिता) है या फिर गाय दुहनेवाली कन्या 'दुहिता' (गवां दोग्ध्री वा) है।

शाप–ऋग्वेंद एवं परवर्ती वैदिक काल मे शाप शब्द मूलतः नदी तलछट का वाचक है, परन्तु वर्तमान में यह स्वप्न आदि में अनुभूत अभिशाप का पर्याय बनते हुए जीवन–धारा में कालिमा का आगमन बन चुका है। (ऋ0 7/18/05, 10/28/4)

गौरू–ऋग्वेद में 'गौ' का प्रचुर उल्लेख मिलता है। वैदिक आर्यो की प्रधान संपति गौ ही थी। 'गावो धेनवः' (ऋ0 1/173/1) गाय की धेनु संज्ञा दूध रूपी धन देने अर्थ में ही हुआ है। 'गौ' शब्द का प्रयोग गाय से प्राप्त पदार्थ दूध, दही, घृत आदि के लिये भी हुआ है। (ऋ0 1/33/10, 1/151/8)

वैदिक काल में 'गौ' अवध्य थी। 'गच्छतीति गौ' इस व्याख्या के अनुसार पृथ्वी की भी 'गौ' संज्ञा दी गयी है।

हिन्दी में 'गो' शब्द गाय के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है और संस्कृत में गाय एवं इन्द्रियों के अर्थ में व्यवहृत है। महर्षि यास्क के मतानुसार वेदों में 'गो' गाय तथा इन्द्रिय के अर्थ में प्रयुक्त तो है ही, 'गौर्यवस्तिलोवत्सः', अर्थात् गो, यव, तिल, वत्स के अर्थ में भी प्रयुक्त है। वेद के लिए भी गो शब्द का प्रयोग हुआ है। गो (वेद) त्र (रक्षक) अर्थात् वेद रक्षक के रूप में ही गोत्र शब्द का प्रयोग हुआ है।

विष्णु–विष्णु शब्द 'विष' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है व्यापनशील होना। व्यापनशील होने से ये सूर्य के वाचक हुए, जिसका अर्थ है– तीनों लोकों में अपनी किरणों को फैलाने वाला। विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्माण्ड को नापने का वर्णन ऋग्वेद में किया गया है। विष्णु के लिए 'त्रिविक्रम' शब्द का भी प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ है तीनों लोक (पृथ्वी लोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष) में अपनी किरणों का प्रसार करने वाले। विष्णु को 'उरुक्रम' तथा 'उरुगाय' भी कहा गया है। उरुक्रम शब्द का अर्थ है– महान शक्तिशाली एवं 'उरुगाय' शब्द का अर्थ है– अनेक प्राणियों से स्तुति किये जाने वाले। उरुगाय शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 121 बार हुआ है। विष्णु शब्द का अर्थ क्रियाशील भी है। यह सभी देवताओं में सबसे अधिक क्रियाशील हैं।

रुद्र–'रुदिर् अश्रुविमोचने' इस धातु में 'णिच्' प्रत्यय लगनें से 'रुद' शब्द निष्पन्न होता हैं। 'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः' जो दुष्ट कर्म करनें वालों को रुलावे उन्हें 'रुद्र' कहा गया है। वेदों में रुद्र को शक्तिशाली एवं भयंकर रूप में चित्रित किया गया है।

वरुणः– वृञ वरणे, वर ईप्सायाम् 'इन धातुओं से उणादि 'उनन' प्रत्यय होने से 'वरूण शब्द सिद्व होता है।' यः सर्वान् शिष्टान् भुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुमिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरूणाः। जो आत्मयोगी, विद्वान, मुक्ति की इच्छा करने वालो तथा धर्मात्माओं द्वारा वरण किये जाते हैं उनकी 'वरूण' संज्ञा है ये प्रमुख वैदिक देवता तथा संपूर्ण भुवनों के राजा माने गये हैं। इनका उल्लेख मित्र के साथ प्रायः आया है। मित्र को दिन का और वरुण को रात्रि का देवता कहा गया है।

बृहस्पति–'बृहत' शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातु से 'डति' प्रत्यय लगनें और बृहत् के तकार का लोप होकर सुडागम होने से 'बृहस्पति' शब्द सिद्व होता है। 'यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः' जो बृहत अकाशादि ब्रहमाण्डों का स्वामी हैं, उस परमेश्वर का नाम बृहस्पति हैं।

बृहस्पति शब्द की व्युत्पत्ति 'वृह्' धातु से हुई है।

वरुण–वरुण शब्द की निष्पत्ति 'वृ' धातु से होती है, जिसका अर्थ आच्छादित करना है। वरुण एक द्युस्थानीय देवता है। इन्द्र और अग्नि के बाद देवताओं में वरुण का महत्त्व है। वरुण की स्तुति 12 सूक्तों में की गयी है। ऋग्वेद में वरुण का मुख्य रूप शासक का है। ऋग्वेद में वरुण के लिए क्षत्रिय, स्वराट, मायावी, उरुशंश आदि विशेषणों का भी प्रयोग मिलता है।

उषस्:– उषा शब्द 'वस् दीप्ती' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ चमकना या प्रकाशमान होना है। ऋग्वेद के 20 सूक्तों में उषा की स्तुति गाई गयी है।
उसे विश्ववारा, प्रचिता, सुभगा, रेवती आदि विशेषणों से अलंकृत किया गया है।
अग्निः– 'अंजू गतिपूजनयोः' अग, अगि+इण प्रत्यय होनें से अग्नि शब्द सिद्ध होता है। 'योंऽचति, अच्यतेऽगत्यङ्गेति सोऽयमग्निः' जो ज्ञानस्वरुप, सर्वत्र जानने प्राप्त होनें और पूजा करनें योग्य है उसका नाम 'अग्नि' है।

'अङ्गति ऊर्ध्वंगच्छति स अग्नि।'

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार ही यास्क ने अग्नि–पद का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि अग्नि का 'अग्नि' नाम इसलिये है, क्योंकि वह अगुआ (प्रधान) है। अग्नि सब देवों में पहले उत्पन्न हुआ है, अतः वह 'अग्नि' है। ज्ञान का आगार होने और अपने उपासक का कल्याण करने से वह 'जातवेदाः' कहा गया है। घी के द्वारा हव्य का भक्षण करने से 'घृतजिह्व', हव्यों को देवताओं तक पहुँचाने से 'हव्यवाहन', सभी मनुष्य इनको चाहते हैं अतः 'वैश्वानर', सब इनकी स्तुति करते हैं, अतः यह नारांशस हैं। इसके अतिरिक्त इनको 'घृतपृष्ठ' (घी की पीठ वाला), 'शोचिषकेश' (ज्वालाओं के वालों वाला), 'रक्तश्मश्रु' (लाल दाढ़ी वाला), 'तीक्ष्णदंष्ट्र' (तेज दांतों वाला), 'रुक्मदन्त' (स्वर्णिम दांतों वाला), 'यविष्ठय' (सदा युवा रहने वाला), 'मेघ्य (सदा पवित्र रहने वाला), 'कविशस्त' (कवियों द्वारा प्रशंसित), 'दमूनस' (घर का परम मित्र) इन अनेक नामों से इन्हें पुकारा गया है। इनको 'सहसपुत्र' भी कहा गया है क्योंकि इसे उत्पन्न करने के लिए मनुष्य को जोर लगाना पड़ता है।
अग्नि को दश कन्याओं से उत्पन्न भी कहा गया है, ये दश कन्याएँ मनुष्य की दश अंगुलियाँ हैं। ऋग्वेद के पहले ही मन्त्र में इन्हें पुरोहित, यज्ञ का देव, ऋत्विक तथा नेता के रूप में माना गया है। इनका शरीर ज्योतिर्मान है। इसे 'धूमकेतु' भी कहा गया है। अग्नि पृथ्वी स्थानिय देवता है। वेदों में 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गयी है। वैदिक मन्त्रों में अग्नि की 3 प्रमुख विशेषताएँ हैं–
1. नेतृत्व शक्ति में सम्पन्न
2. यज्ञों के आहुतियों को ग्रहण करने वाले, तथा
3. तेज एवं प्रकाश का अधिष्ठाता

इसके अतिरिक्त निरुक्त एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों की निर्वचन–प्रक्रिया अत्यन्त रोचक प्रतीत होती है जिसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यथा–यज्ञार्थक 'मख' शब्द की व्युत्पत्ति– 'छिद्रम् खमित्युक्तं सत्य मेति प्रतिषेधः, मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति।' (गोपथ ब्रा. 2/2/5) 'ख' का अर्थ छिद्र है, इसका 'मा' शब्द के द्वारा निषेध किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि यज्ञ में कोई अशुद्धि या भूल नहीं होनी चाहिये।
'रथ' शब्द की व्युत्पत्ति–'तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते'(1/2/21) रसपूर्ण अर्थात् आनन्दमय होने से इसका नाम 'रथ' हो गया।
'दीक्षित' शब्द की व्युत्पत्ति– 'श्रेष्ठां धियं क्षियतीति..... दीक्षितः' (गोपथ ब्रा. 1/3/19) श्रेष्ठ बुद्धि का निवास होने के कारण 'दीक्षित' हो गया।
'स्वेद' शब्द की व्युत्पत्ति–'सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते' (1/1/1) वेदके अच्छे जानकार होने से ही पसीने को 'स्वेद' कहा जाता है। इसपर एक आख्यायिका भी है।
'समुद्र' शब्द संस्कृत में केवल सागर का अर्थ–बोधक है, परन्तु वैदिक भाषा में विस्तीर्ण का पर्यायवाची होने से सागर तथा आकाश–इन दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त है।
अकूपार सूर्य को भी कहते है, वह अकुत्सित (सुन्दर) (मार्ग को) पार करता है। (वह असीम है, उसे पार करना कठिन है)। समुद्र को भी अकूपार कहते हैं, वह असीम है, उसकी सीमा विशाल है। कछुआ भी अकूपार कहलाता है, अकूपार=कुएँ में नहीं चलता। कच्छप=अपने मुँह की रक्षा करता है, अथवा अपनी पीठ के द्वारा रक्षा करता है।

निष्कर्षः
वेद–प्रयुक्त इन्द्र–अग्नि आदि का परमात्मशक्ति, वृत्र का मलिनता से आवृत करनेवाला, अर्णव शब्द का तेजः पुंज, क्षरीरसागर का अमृतमय अनन्तसत्ता आदि अर्थ करने पर वेद के गुह्यार्थ की अनुभूति होती है। इसके अतिरिक्त धारण करने से 'धरा', जन्म देने के कारण 'जाया', वरण से 'वरुण', मृधु से 'मृत्यु', भरण करने से 'भृगु', अथ+अर्वाक से 'अथर्वा' आदि विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न शब्दों की निरुक्ति है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. निरुक्तम् (मुकुन्द झा बख्शी), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान
2. वैदिक कोष (मधुसूदन झा), चौखम्बा प्रकाशन
3. ऋग्वेद संहिता, (मंत्रानुक्रमण्या सहितं)–नाग पब्लिशर्स
4. वाक्यपदीयम्, काशी संस्कृत ग्रंथमाला
5. कल्याण, वेद कथाङ्क, गीताप्रेस, गोरखपुर–1999
6. मनुस्मृति, 2/10 श्री पं0 हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान
7. वैदिक कोश, सूर्यकान्त, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, वैदिक इण्डेक्स, भाग–1 (रामकुमार राय), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
8. वैदिक कोश, सूर्यकान्त, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, वैदिक इण्डेक्स, भाग–1 (रामकुमार राय), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
9. यजुर्वेद संहिता 31/19 (मंत्रानुक्रमण्या सहितं)– नाग पब्लिशर्स